वर्तमान भारतीय निर्वाचन पद्धति–एक शव परीक्षण

मधुसूदन अग्रवाल, गोंदिया, महाराष्ट्र

राजनीति शास्त्र के ज्ञाता, लोकतांत्रिक शासन पद्धति को भले ही आधुनिक व प्रायोगिक कहें किन्तु वास्तविकता तो यह है कि लोकतंत्रात्मक राज भारत में हजारों वर्ष से विद्यमान है। त्रेता में सूर्यवंशी राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र ने लोकतंत्र व लोकरंजन के श्रेष्टतम आदर्श दिये हैं। यही कारण था कि महात्मा गॉधी ने अपने देश में रामराज्य की स्थापना का स्वप्न संजोया था। रावण वध के उपरान्त, अपनी प्राण प्रिय पत्नी महारानी सीता को राजा राम ने सिर्फ इसलिये निष्कासित–निर्वासित कर दिया क्योंकि मात्र एक अति सामान्य नागरिक ने सन्देहास्पद लांछन लगाया था, जबकि समूचा राज्य व समस्त नागरिकों का मत सीता के पक्ष में था। लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रतिपालन की यह पराकाष्ठा ह। राजधर्म की संहिता को परम विद्वान रचनाकार तुलसीदास ने ''जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी'' वह नृप अवस नरक अधिकारी लिखकर स्पष्ट किया है।

''जनता का, जनता हेतु, जनता द्वारा'' इस सम्भवतः सर्वाधिक लोकप्रिय परिभाषा से ज्ञात हो जाता है कि निर्वाचन ही लोकतंत्र का प्रथम प्रवेश द्वार है। विभिन्न देशों में मताधिकार प्रयोग की अनेक विधियॉ प्रचलित हैं। सबसे पुराने अमरोकी लोकतंत्र में राष्ट्रपति सीधा जनता द्वारा चुना जाता हैं और प्रत्याशी का चयन, संगठन में आन्तरिक निर्वाचन द्वारा किया जाता है। हमारे देश में संघीय निर्वाचन पद्धति से, सामान्य विशेष मतदान से, आनुपातिक क्षेत्रों से, बहुसदस्यीय संसद का गठन होता ह जिसका मुखिया प्रधान मंत्री कहलाता है और जो मनोनीत मंत्री परिषद द्वारा शासन तंत्र को संचालित करता है। द्विसदस्यीय संसद व विधान सभाओं की रचना में प्रत्यक्ष –अप्रत्यक्ष सामान्य व संक्रमणीय मतदान तथा मनोनयन आदि सारे प्रावधान हैं और नियंत्रण तथा संतुलन का यथासम्भव प्रयास किया गया हैं।1950 में घोषित गणराज्य भारत के पहले आम चुनाव 1952 में हुये जिसमें भारतीय संसद सहित 18 राज्यों की विधानसभाओं का गठन हुआ।डा0 भीमराव अम्बेडकर की अध्यक्षता में क्रियाशील संविधान परिषद के निर्देशानुसार वर्ग–विशेष के आरक्षण को दृष्टिगत रखते हुये अनुसूचित जाति–जनजाति के लिये प्रछन्न क्षेत्र बनाया गया था और सभी मतदाताओं को दो वोट देने थे। भन्डारा लोकसभा क्षेत्र से भी चतुभ़ुज भाई जसानी(सामान्य)व एड0सी0वी0 बोरकर (आरक्षित) दोनों कांग्रेस से निर्वाचित हुये थे। उल्लेखनीय है कि तब स्वनिर्मित रिपब्लिक पार्टी के प्रत्यासी श्रद्धेय डा0 अम्बेडकर की दुर्भाग्यजनक पराजय हुई थी।

निषिद्ध और अवांछनीय तरोकों व हथकंडों द्वारा विजय प्राप्त करने का संकेत यद्यपि इस प्रथम चुनाव में ही मिल गया था तथापि प्रभुसत्ता सम्पन्न सामर्थयवान,पदारुढ़ शासकों व नेताओं ने इसे अपनी अपार लाकप्रियता का पैमाना बनाकर खारिज कर दिया। एड0 बोरकर जिन्हें मंत्री बनाकर पुरस्कृत किया गया था, विमान दुर्घटना में 1953 में मृत्यु हो गई। श्री जसानी का निर्वाचन आदर्श संहिता के उल्लंघन का आरोप सिद्ध होने पर न्यायालय ने रद्द कर दिया।

आज चौदहवी लोकसभा के निर्वाचन तक तो चुनाव प्रबन्धन का यह दलदल समूचे भारतीय लोकतंत्र को निगल जाने की तैयारी में हैं। जातिवादी समीकरणों, धन और बाहुबल, खोखली घोषणाओं, धुआधार प्रचार और कुटिल दॉव पेचों पर आधारित दुनिया के सबसे बड़ें लोकतंत्र के ये निर्वाचक,स्वाधोनता के लिये प्राणों का बलिदान करने वाले सेनानियों, भारत मॉ के चरणों में सर्वस्व न्योछावर करने वाले सपूतो और हजारों वर्ष की साधना द्वारा मानव जाति की उत्कृष्टतम संस्कृति की रचना करने वाले मनीषियों की आहत आत्माओं की विकराल चिंता है जिस पर हमारे स्वनामधन्य राजनेता अपनी–अपनी रोटियॉ सेंक रहें हैं। लोकतंत्र के ये झंडाबरदार जिस संसद और विधान सभाओं की मनोहर झॉकी दिखाते हुये नहो अघाते वे तो सायास निर्मित नयनाभिराम राजपथ हैं। यदि सच्चाई जानने का साहस हो तो परिषदों,पंचायत समितियों और ग्राम पंचायतों की शैलियों में उतरिये जहॉ भारतीय लोकतंत्र सड़ रहा है।

1999 के आम चुनावों तक संग्रहित,अनुमानित ऑकड़ो के अनुसार देश के कुछ मतदाताओं में से 5673 प्रतिशत ने ही अपने मताधिकार का प्रयोग किया। इसमें तंत्र की त्रुटियों और दुस्साहसी, तिकड़मो कार्यकताओं की कृपा से सम्पन्न मतदान भी समाविष्ट है। समझ लोजिये कि देश के पचास प्रतिशत मतदाता ही मतदान करते हैं शेष पचास प्रतिशत, कारण जो भी हो, मतदान करते ही नहीं। सात–आठ प्रतिशत नागरिक तो चुनावी तंत्र की शिथिलता के कारण मतदाता सुची में स्थान ही नहीं प्राप्त कर पाते। भारतीय लोकतंत्र की विशाल काया का आधा हिस्सा मानों निष्प्राण पड़ा रह जाता है पचास प्रतिशत इंद्रियॉ, ज्ञानेद्रियॉ, कर्मेद्रियॉ, अंग–प्रत्यंग, दिल और दिमाग मानों दृश्य में ही नही और एक हाथ और एक ऑख वाला यह शरीर सरपट बेतहाशा भाग रहा है।

महात्मॉ गॉधी के व्यापक अहिंसात्मक आन्दोलनों, द्वितीय विश्वयुद्ध से ध्वस्त, जर्जर एवं क्लान्त ब्रिटिश शासकों की हताशा और साम्राज्यवादी मनोवृत्तियों के विरुद्ध उठती सारी दुनियॉ की आवाजों ने देश को आजादी तो दिला दी किन्तु इसे प्राप्त करने के लिये भारतवासियों ने इसकी समुचित कीमत नही चुकाई जिसे सुभाषचन्द्र बोस ने खून और भगत सिंह जैसे वीरों ने इन्कलाब जिन्दाबाद के नारों में मुखर किया था। राष्ट्राभिमान और अविचल, अविकल समर्पण से ओत–प्रोत ''वन्दे मातरम्'' जैसा अमृत वचन ता हम आज तक कंठस्थ नहीं कर पाये और कंठस्थ इकबाल चित्रित भारत की अमिट हस्ती को कोई नादान चन्द सिक्कों अथवा मजहबी नशे में मटिया मेट करने में आमादा है। सत्ता लोलुप पदाधिकॉक्षी, स्वार्थी और भूखे नेताओं ने लोकतंत्र की पावन गंगा को गंगोत्री में ही भयानक रुप से मैली कर दिया है। श्री दिग्विजय सिंह जैसे सिद्धहस्थ राजनीतिज्ञों ने तो चुनावी सफलता को विकास व सेवा की बनिस्पत प्रबन्धन के आधीन बताया है। यदि भारत के भाग्य विधाता भारत में पाताल तोड़, गगनचुम्बी लोकतंत्र स्थापित करना चाहते हैं तो इसके मूलाधार निर्वाचन की समूची प्रक्रिया और स्वरुप को सम्पूर्ण निरापद, निर्मल, निष्पक्ष, निर्भय, निष्कलंक, निबाध, नियमित, निर्णायक, निर्विकार और सुरक्षित बनाना होगा। निर्वाचन प्रक्रिया में विधमान त्रुटियों और कमियों की ओर इंगित करते हुये मैंने 1977 में एक पत्र तत्कालोन जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री चन्द्रशेखर को प्रेषित किया था उसमें जिन बिन्दुओं को रेखांकित किया गया था वे आज भी प्रासंगिक और उपयोगी हैं। अभीष्ट है (1)अनिवार्य मतदान (2)वापस बुलाने का अधिकार (3)अस्वीकार का अधिकार (4)जातिवादी राजनीति का सघन उपचार। कुचक्रों और षड़यत्रों में उलझकर जनता पार्टी की सरकार का अल्पायु में ही पतन हो गया और नासूर यथावत पनपता रहा।आज लम्बे समय के बाद आयोग ने अस्वीकार के अधिकार को तो आधे–अधुरे मन से स्वीकार कर लिया है किन्तु अनिवार्य मतदान कानून के अभाव में आज भी देश की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा इस परम पावन, प्राणप्रद कर्तव्य पालन से दूर है। आश्चर्य है कि शिक्षित, वेतनभोगी,

कर्मचारियों में से कतिपय सवैतनिक छुट्टी पाकर भी मतदान केन्द्र तक जाने का कष्ट नहीं उठाते और व्यक्तिगत कार्यो तथा मनोरंजन में व्यस्त रहते हैं। मेरे दृष्टिकोण से तो जो नागरिक अपने अत्यंत मूल्यवान मताधिकार का प्रयोग जानबूझकर नहीं करत उन्हें भारतीय नागरिक कहलाने का कोई नैतिक अधिकार नहीं है। उनसे नागरिकों के मूलभूत सवैधानिक अधिकार वापस ले लेना चाहिये और शासकीय सेवाओं तथा सुविधाओं क लाभ से वंचित कर देना चाहिये।

जातिभेद एवं वर्गभेद के उन्मूलन की आवाज बुलन्द करने वाला प्रत्येक राजनैतिक दल प्रत्याशियों के चयन में सबसे पहले जानना चाहता है कि आवेदक के क्षेत्र में उसकी जाति के कितने प्रतिशत वोट हैं। जातिगत वोटों की संख्या सफलता का सबसे बड़ा आधार बन गया है। इस विकार से राजनिति ही नहीं, शासन प्रशासन भी बुरी तरह प्रभावित है। जातिगत समीकरणों की उत्पत्ति प्रत्याशी के नाम से होतो है जो मतदान पर मुद्रित होता है।

दलगत राजनीति में सर्वोपरि है दल की विचारधारा, उसकी संकल्पशक्ति, नीति और कार्यक्रम। सरकार एक समूहवाची संज्ञा है इसीलिये शासन पार्टी का होता है। मेरे विचार में स्थानीय स्वराज्य संस्थाओं को छोड़कर संसदीय और विधान सभाई निर्वाचनों में प्रत्याशो पंजीकृत राजनैतिक दल का होना चाहिये और मतदान पर केवल उसका अधिकृत चिन्ह अंकित होना चाहिये। क्षेत्र का प्रतिनिधि दल निश्चित करेगा। कुछ देशों में इस पद्धति की फलप्रद व्यवस्था है।

सत्ता के संगठन पर हावी होने के अंकुर तो नेहरु काल में ही फूटने लगे थे किन्तु सुपुत्री इन्दिरा गॉधी ने इसकी जडें पाताल तक पहुॅचा दी। संगठन के पदाधिकारी, मंत्रियों और निर्वाचित प्रतिनिधिया के मुखापेक्षी हो गये हैं। प्रतिनिधि के मनोनयन का अधिकार संगठन को प्रभुसत्ता और प्रतिष्ठा को पुनस्थापित करेगा। शक्तिशाली संगठन ही सुशासन और नियंत्रण के लिये अभिप्रेत है। इससे जनसामान्य में संगठन की साख तथा विश्वसनोयता बढ़ेगी। वापस बुलाने का अधिकार स्वयंमेव संगठन के पास होगा। इससे कार्यक्षमता, कार्यकुशलता और अनुशासन में वृद्धि होगी। वर्चस्व आकांक्षी मंत्री,सांसद और विधायक व्यक्तिगत अह्म भाव की तुष्टि और गुटबाजी छोड़कर पार्टी की छबि निखारने उसे और लोकप्रिय बनाने में जुट जायेंगें।

पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध तथा अर्थकेन्द्रीत जीवन दर्शन के प्रभाव में भारतीयता निरंतर आहत हो रही है। सामाजिक और धार्मिक संगठनों संस्थाओं की प्रभुसत्ता को राजनीति व सत्ता ने लील लिया है। ऐसे में मूल्याधारित, कल्याणकारी लोकतंत्र की स्थापना द्वारा ही भावी पीढ़ी का नैतिक पतन रोक सकते हैं।

जो उसूले गुलिस्तां से वाकिफ नहीं
उनके हाथों चमन का निजाम आ गया है।

आदरणीय मुनि जी,

2014 में सम्पन्न लोकसभा व विधानसभा के चुनावों ने बता दिया कि चुनावी सफलता धनबल और प्रबन्धन पर निर्भर है। जटिल समीकरणों,सीमाहीन निवेश मिथ्या घोषणाओं, बेतहशा प्रचार– अपप्रचार और जातिवादी राजनीति के कारण अवांछनीय तत्व भी अलंकृत हो रहें हैं। योग्य, सक्षम और ईमानदार व्यक्ति राजनीति से परे होते जा रहें हैं, यहॉ तक कि वितृष्णा के कारण मतदान भी नही करते।

यह स्थिति अनिष्टकारी है। देश ,समाज और व्यक्ति का भविष्य विकृत व क्षतिग्रस्त होने की भी सम्भावना है।

मैं निराश नहीं ह् यद्यपि प्रतिगामी शक्तियॉ प्रबलतर होती जा रही हैं। विगत लम्बी कालावधि से इस क्षे्त्र की राजनीति व गति विधियों में सक्रिय हूॅ। प्रदेश एवं देश की राजनीति के राग–रंग भी देखे और समझे हैं। परिस्थितियों के उतार –चढ़ाव स्पन्दित करते हैं। फलस्वरुप भारतीय निर्वाचन पद्धति की न्यूनताओं व त्रुटियों पर अपने विचारों को लिपीबद्ध किया है जिसकी एक प्रति आपको समीक्षार्थ प्रेषित कर रहा हूॅ।

कृपया मूल्यांकन कर प्रतिकिया व्यक्त करें, आभारी रहूॅगा। धन्यवाद!

जीवनपथ जो कंटकमय हो,
अन्धकार का घोर प्रलय हो,
किन्तु साधना यही एक हो,
पग–प्रति–पग गतिमान चाहिये!
मॉ! बस यह वरदान चाहिये!!

समीक्षाः—दो हजार चौदह के चुनावों के विजेता धन बल, प्रचार तथा जातिवादी राजनीति के कारण अच्छे परिणाम पा सके इस निष्कर्ष से मैं सहमत नहीं। मुझे लगता है कि स्वतंत्रता से लेकर दो हजार चौदह तक के समाजवादी अर्थ व्यवस्था तथा अल्पसंख्यक तुष्टिकरण के विरुद्ध इस चुनाव में जनता ने आगे आकर समर्थन दिया। विजेता टीम ने धनबल तथा हिन्दू साम्प्रदायिकता का भी सहारा लिया किन्तु यह धन बल पुराने तरीकों से भिन्न नहीं था। मैं हमेशा से इस विचार का रहा हूॅ कि नेहरु और भीमराव अम्बेडकर ने मिलकर गॉधी के प्रयासों को असफल किया। गोडसे की अंधराष्ट्रभक्ति ने इन दोनो का काम आसान कर दिया। संघ परिवार द्वारा गॉधी को अपना पहला राष्ट्र शत्रु मानना नेहरु और अम्बेड़कर के लिए सुरक्षा कवच बना रहा। संघ परिवार की इस अकेली जिद ने इतने वर्षो तक समाजवाद आर अल्पसंख्यक तुष्टीकरण को जीवित रहने का अवसर दिया। लगभग पूरा का पूरा संघ परिवार, इमानदार तथा भावना प्रधान होता है। उसमं चिन्तन, समझदारी तथा देश काल परिस्थिति अनुसार संशोधन के अवसर शून्य होते हैं। आज भी ये लोग हिन्दू राष्ट्र की मूर्खता पूर्ण जिद के कारण मोदी को संकट में डाल सकते हैं। यदि किन्हीं दलों ने चालाकी करके इनकी हॉ में हॉ मिला दी तो ये कभी भी पाला बदलकर कॉग्रेस या कम्युनिष्टों का भी साथ दे सकते हैं। अतः इन मामलों में सतर्क रहने की आवश्यकता है।

यदि वर्तमान चुनाव प्रणाली में संशोधन करना हो तो मैं राष्ट्रपतोय प्रणाली के पक्ष में हूॅ। मैं राइट टू रिकाल या राइट टू रिजेक्ट का भी पक्षधर हूॅ किन्तु मैं अनिवार्य मतदान के पक्ष में नहीं हूॅ। अनिवार्य मतदान का मतलब है वर्तमान संसदीय लोकतंत्र के प्रति सहमति पर मुहर। मैं वर्तमान संसदीय लोकतंत्र को सहभागी लोकतंत्र की दिशा में बढ़ाने का पक्षधर हूॅ।

किसी बहुमूल्य वस्तु की सुरक्षा के लिये नियुक्त सुरक्षा कर्मी को बहुत सोच समझ कर नियुक्त करना पड़ता है। वर्तमान संसदीय लोकतंत्र में नियोक्ता को अपना अप्रत्यक्ष मालिक चुनना पड़ता हैं। लोक स्वराज्य प्रणाली में नियुक्त इकाई प्रत्यक्ष रुप से मैनेजर होती है।

मालिक और मैनेजर की शक्तियों में आसमान जमीन का अन्तर होने से नियुक्ति में सतर्कता का महत्व कम होगा। आप नियुक्त इकाई का पावर और महत्व कम करने की अपेक्षा अपने चयन में सतकता बढ़ाने के पक्षधर हैं। मैं सतकता को ज्यादा महत्व न देकर नियुक्त इकाई की शक्ति में कमी करने का पक्षधर हूँ।

मैं किसी भी प्रकार के जातीय, धार्मिक या लैंगिक आरक्षण के विरुद्ध हूँ। अम्बेडकर जी ने संविधान में जो आरक्षण दिया था उसके लिये भी उस समय के अन्य नेता पक्ष में नहीं थे किन्तु दस पद्रंह वर्ष की सीमा रेखा बनाकर मजबूरी में कुछ आरक्षण दिया गया। उसके बाद आरक्षण को बढ़ाना संविधान विरुद्ध कार्य है किन्तु कई दशकों से ऐसा संविधान विरुद्ध काम जारी है।

स्वतंत्रता की कोई कोमत भारत ने नहीं चुकाई यह कहना ठीक नहीं। अठारह सौ सत्तावन के स्वतंत्रता संघर्ष को मिलाकर देंखे तो भारत का त्याग बहुत बड़ा मानना चाहिये।

आप दल व्यवस्था को अधिक मजबूत करना चाहते हैं। यदि भारत में निर्दलीय लोकतंत्र हो तो क्या कठिनाई है। संविधान निर्माताओं ने कहीं भी दल या दलदल को मान्यता नहीं दी। संसद में प्रत्येक सदस्य को बोलने की पूरी स्वतंत्रता है। राजीव गॉधी ने बाद में दलों को मान्यता दे दी। यह मान्यता भी संविधान विरुद्ध होने से अस्वीकार करने योग्य है। सरकार एक समूहवादी संज्ञा है। यह संज्ञा कभी समाज ने नहीं दी। नेताओं ने स्वयं को सरकार कहना शुरु किया और वह शब्द प्रचलित हो गया। सरकार की जगह प्रबंधक होना चाहिये।

सरकार पर दल का नियंत्रण होना चाहिये। मैं इसके पक्ष में हूँ किन्तु दल का नियंत्रण वर्तमान स्थिति में संशोधन मात्र है, समाधान नहीं। समाधान तो लोक स्वराज्य प्रणाली ही हो सकती है।

(2)आचार्य अनिरुद्ध शास्त्री, एम0 ए0एल0 टी0 बंगलोर, कर्नाटक ज्ञानतत्व–11601

प्रश्नः–आज भारत का राजस्व कर्मचारी इतना भ्रष्ट क्यों हो गया है कि वह नियम कानून ताकपर रखकर कुछ भी कर रहा है। सरकार उन्हं योग्यता से दो गुना वेतन देती है फिर भी वह गलत करता है। उसके उपर जॉच अधिकारी बैठा है फिर भी किसी पर कोई नियंत्रण नहीं।

उत्तरः– एक सरकारी कर्मचारी अपने पद के अनुसार घूस अथवा एप्रोच के द्वारा नौकरी पाता हैं। अधिकांश कर्मचारी व्यवसाय समझ कर ही नौकरी करते हैं। नौकरी के साथ सेवा भाव से जुड़ने वाले कर्मचारी गिने चुने ही हैं और इनकी भी संख्या घटती ही जा रही है। जब उपर से नीचे तक के कर्मचारी एक समान हैं तो किसी को भय किसका? जब जनप्रतिनिधि ही भ्रष्ट हैं तो आप कर्मचारियों से क्या उम्मीद करते हैं। इन कर्मचारियों की समाज में आवश्यकता और प्रभाव घटाने के लिये अधिकतम निजीकरण कर देना चाहिए। जितना ही निजीकरण बढ़ेगा उतना ही भ्रष्टाचार घटता जायगा। मेरे विचार में वर्तमान भारतीय समाज में व्याप्त अनेक बुराईयों का समाधान अधिकतम निजीकरण ही है।

(3) ओम प्रकाश मंजुल, पीलिभीत, ज्ञानतत्व 6011

विचारः–लोहा को तब पीटना चाहिए जब गर्म हो। लाल लोहे को पीटकर उसे मनचाहा रुप दिया जा सकता है। चीन सन्1962 से हमारी सौ दो सौ नहीं हजारों किलोमीटर जमीन को दबाये बैठा है तथा अरुणाचल व लद्दाख के कुछ हिस्सों को अपनी जमोन कहता–दिखाता आ रहा है। हाल ही में चीनी राष्ट्रपति के भारत –दौरे के समय और उसके बाद भी चीन की लद्दाख के चुमार क्षेत्र में घुसपैठ का निहितार्थ यही है। (हालॉकि यह चीन की बदमाशी और अहंकार का नितांत एक पक्षीय मामला है।) हेकड़ी और गद्दारी चीन के खून में समायी हुई है। गत सदो के छठे दशक में पंचशील की दुहाई देकर चीन ने भारत के साथ मैत्री सम्बंध स्थापित किया तथा चीनी–हिन्दी भाई–भाई का नारा लगाया और कुछ ही समय बाद सन् 1962 में भारत की पीठ में छुरा भोंककर जबरन युद्ध थोपकर भारत की जमीन हड़प ली। हालॉकि भारत उस समय गफलत के कारण युद्ध के लिए कतई तैयार न था। समय बलवान भी होता है और बदलवान भी। आज समय बदल गया है। चीन से निपटने के लिए अब भारत के पास अनुकूल समय है। ऑकड़े बताते है, सन्1962 के आसपास चीन युवा था और भारत बूढ़ा।(हालॉकि चीन की जनसंख्या भी भारत से अधिक थी।) आज भारत युवा है और चीन बूढ़ा।भारत की दो तिहाई(लगभग 70 करोड़)जनसंख्या युवाओं की है,जबकि चीन में शायद दो तिहाई लोग बुढ़ा चुके हैं। इसीलिये चीन ने अपने सन् 1979 के कानून, जो किसी भी चीनी को एक से अधिक बच्चे पैदा करने की अनुमति नहीं देता, को शिथिल करके 20 हजार चीनियों को दूसरा बच्चा पैदा करने की अनुमति दी है।आज भारत के युवाओं के बल पर भारत का युवा नेतृत्व देश ही नही,दुनिया का भविष्य लिखने जा रहा है। भारत की युवा शक्ति विश्व मंच पर कइ क्षेत्रों में अपना लोहा मनवा चुकी है। युवाओं के दम पर हम सन् 2020 तक विश्व की महाशक्ति बनने और चीन को पीछे छोड़ने का साहस शक्ति और इरादा रखते है। आज दुनिया में भारत का नक्शा है। वो दिन दूर नही, जब चीन मात्र अपने माने हुए मानचित्र से न केवल अरुणाचल को निकाल देगा, वरन् भारत की हड़पी हुई जमीन भी खेदपूर्वक वापस कर देगा। रही बात पाकिस्तान की तो वह बेचारा कश्मीर को सोने की तश्तरी में रखकर भारत को अर्पित करने के लिये तत्पर रहगा। इस सबके लिए भारत को युद्ध लड़ने की आवश्यकता नहीं है। भारत को अति आत्मविश्वास वश आत्ममुग्ध होने की भी जरुरत नहीं है। जरुरत बस इस बात की है कि भारत के तेवर ढीले नहीं पड़ने चाहिए। उसकी कूटनीति, व्यवहार तथा भाषा से ऐसा पराक्रम तथा प्रताप झलकना चाहिए कि पड़ोसी उससे भयभीत रहें।

उत्तरः–लोहे को गर्म करके ही पीटकर उसका स्वरुप बदला जा सकता है किन्तु इसके साथ –साथ यह भी आवश्यक है कि इस तरह गर्म लोहा न हाथ से पीटा जा सकता है,न लकड़ी से और न ही गर्म लोह से। चीन के साथ टकराने के पूर्व अपनी क्षमता का भी आंकलन करना होगा। इसके साथ–साथ विश्व क घटनाक्रम के साथ भी तालमेल बिठाना होगा। पिछली सरकारों की तुलना व्यर्थ है। मेरे विचार में मोदी सरकार इस संबंध में विश्वास करने योग्य है कि वे जो भी निर्णय लेंगे वह सोच समझकर ही लेंगे। यदि किसी देश का प्रशासक मजबत् प्रवृत्ति का हो तो उसे युद्ध के लिये प्रेरित करना कोई अच्छी बात नहीं। गर्म लोहे को बाहर से और गर्म करना कितना लाभदायक होगा यह विचार करने योग्य है। क्या आप नहीं जानते हैं कि जर्मनी में हिटलर को ऐसा ही प्रोत्साहन मिला था जिसका परिणाम आप सब

जानते हैं। मुझे विश्वास है कि नरेन्द्र मोदी सरकार सूझबूझ से ही निर्णय लेगी किन्तु ऐसे संवेदनशील विषय पर देश काल परिस्थिति का आंकलन करके ही सुझाव देना चाहिये।भारत और चीन के बीच सीमा विवाद पुराने समय से चला आ रहा है। आवश्यक नहीं कि भारत पूरी तरह सच ही बोल रहा हो। संभव है कि भारत ने भी कुछ बढ़ा चढ़ाकर प्रचारित किया हो। यह भी संभव है कि अंग्रेजो ने स्वतंत्रता के पूर्व ही भारत चीन सीमा विवाद को जन्म दिया हो। ऐसे मामलों में विद्वानों को अपनी व्यक्तिगत विश्वसनीयता को दॉव पर नहीं लगाना चाहिये। राजनीतिज्ञों के द्वारा प्रचारित किसी बात को बिना जाने बुझे अक्षरशः सत्य मानकर उसे प्रचारित करना विद्वानों का हल्का सिद्ध करता है।

पडोसियों से टकराव बिल्कुल अन्तिम स्थितियों में ही करना चाहिये। यदि छोटा विवाद हो अथवा समझौता दूसरे पक्ष का मनोबल बढ़ाने वाला न हो तो मिलजुल कर समझौता करना चाहिये। अटल बिहारी बाजपेई ने चीन से कुछ समझौते किये थे। अन्य मामले भी सुलझाने हेतु तैयार रहना चाहिये।

(4)रामवीर श्रेष्ठ,ऐंकर,ए टू जेड़ न्यूज चैनल, दिल्ली

(1) आपने अपने लेख में खुद को कट्टर हिन्दू कहा है, जबकि आप हमेशा से कट्टरपन के खिलाफ मोर्चेबंदी करते रहे हैं, ऐसा क्यों?

(2) हिन्दुओं को लेकर आपने कहा है कि हिन्दू गुलामी सह सकता है, गुलाम नहीं बना सकता। मैं जानना चाहता हूॅ कि अगर इस बात को हिन्दू अपना आदर्श बना ले, तो उसके वजूद की कल्पना आप कैसे कर सकते हैं?

उत्तरः—जब कोई व्यक्ति विचार की अपेक्षा भावनाओं के आधार पर निर्णय करने लगे तथा उसके कार्य उसके संस्कारों से प्रभावित होने लगें तो उस व्यक्ति को कट्टर कहते है। कट्टर हिन्दुत्व सर्वधर्म समभाव,वसुधैव कुटुम्बकम,वर्ण आश्रम व्यवस्था से परिभाषित होता है। कट्टर हिन्दू सत्य और न्याय की दिशा में झुका हुआ होता है। वह या तो किसी संगठन से नहीं जुड़ता अथवा जुड़ता भी है तो अपनी पहचान के विपरोत नहीं जाता। मैं अपने को कट्टर हिन्दू मानता हूॅ। मैंने अग्रवाल वैश्य कुल में जन्म लेने के पश्चात् भी पन्द्रह वर्ष की उम्र से ही ब्राहमण वर्ण स्वीकार किया तथा तब से आज तक ब्राहमण के दायित्व निभा रहा हूॅ। मैंने कभी किसी राजनैतिक पद अथवा धन के प्रति आकर्षण नहीं किया। मैं उम्र के हिसाब से वानप्रस्थी हूॅ तथा सन्यास की दिशा में बढ़ रहा हूॅ।वर्तमान समय में कुछ हिन्दू वर्ण व्यवस्था के विपरोत जन्म से ही वर्ण मानने लगे। वे गुणों को सर्वोच्च्य प्राथमिकता देने की अपेक्षा पहचान को ही सर्वोच्च्य प्राथमिकता देने लगे। ऐसे हिन्दुओं की कट्टरता के विरुद्ध मैं हूॅ क्योंकि मेरे विचार में इस प्रकार की कट्टरता हिन्दुत्व से मेल नहीं खाती बल्कि इस्लाम से मिलती जुलती है।

मैं गुलामी को किसी भी रुप में अच्छा नहीं समझता भले ही वह सहने की बात हो या गुलाम बनाने की बात। आज तक किसी आदश हिन्दू राजा ने युद्ध जीतकर भी उन्हें गुलाम नहीं बनाया जबकि इस्लाम या इसाइयत का इतिहास सब जानते हैं। फिर भी यदि गुलाम बनाने और बनने के बीच किसी एक का चयन करना हो तो हिन्दु गुलाम बन सकता है किन्तु बना नहीं सकता। इसी तरह हिन्दू अत्याचार सह सकता है किन्तु कर नहीं सकता।कई सौं वर्षो तक हिन्दुओं ने गुलामी भी सही है और अत्याचार भी। आज सारी दुनियॉ में अत्याचार सहने वाला हिन्दू सिर उठाकर चल रहा है और करने वाला इस्लाम दुनिया के लिये समस्या बना हुआ है। मेरे विचार में इसी आदर्श में हिन्दुत्व का वजूद छिपा हुआ है।

फिर जो हिन्दू इस्लाम से इस्लामिक पद्धति से लड़ रहें हैं,उनके मैं खिलाफ नहीं किन्तु समस्या तो तब आती है कि ऐसे लोग आदर्श हिन्दुत्व के खिलाफ बोलना शुरु कर देते हैं। मेरा स्पष्ट अनुभव है कि संघ परिवार अथवा शिवसेना ऐसे आदर्श हिन्दुत्व के विचार को सहन नहीं करती जबकि आदर्श हिन्दुत्व तथा साम्प्रदायिक हिन्दुत्व एक दूसरे के पूरक हैं। पूरी दुनिया जानती है कि गॉधी आदर्श हिन्दुत्व के प्रतीक थे। गॉधी की हत्या किन लोगों ने की यह भी सबको पता है। मैं आदर्श हिन्दुत्व का प्रेरक हूॅ। मुझे अपने शहर मं ही साम्प्रदायिक हिन्दुत्व से जुड़े लोग शत्रु समान मानते हैं। मैं इस्लाम की तुलना में साम्प्रदायिक हिन्दुत्व का अच्छा मानता हूॅ तथा सहायता भी करता हूॅ किन्तु साम्प्रदायिक हिन्दुओं का एक बड़ा समूह मुझे मुसलमानों से भी ज्यादा खतरनाक शत्रु मानता है। मेरे विचार से इन सबके बीच समन्वय होना चाहिये।

(5)श्रीमती ठाकुर,भानुप्रतापपुर, कॉकेर (छ0ग0) ज्ञानतत्व 12136

विचारः—मैं आपका बहुत सम्मान करती हूॅ किन्तु आप कभी—कभी आशाराम बापू की आलोचना करते हैं उससे मुझे कष्ट होता है। मैं उनकी भक्त हूॅ। उन्होने अनेक अच्छे काम किये। अनेकों को शराब आदि व्यसनों से मुक्त कराया। एक झूठे आरोप में फंसाकर उन्हें जेल में डालना कितना उचित है? इस प्रकार तो कोई सन्त मार्ग पर जाना ही नहीं चाहेगा।

उत्तरः— आपको किसी की प्रशंसा करने का अधिकार है और मुझे उनकी आलोचना करने की स्वतंत्रता है।आवश्यक नहीं कि आप ही सही हो या मैं। कौन सही है कौन गलत यह तो विपरोत मान्यता वालों के बीच विचार मंथन से ही संभव है।

संत,व्यापारी तथा अपराधी में बहुत अन्तर होता है। वेष भूषा अथवा जनहित के मार्ग उनके कुछ माध्यम हैं। मुझे व्यक्तिगत रुप से जानकारी है कि मेरा एक मित्र साधुवेष धारण करके बहुत सम्पन्न हो गया किन्तु उसका एकमात्र कार्य बड़े—बड़े नेताओं को औरत सप्लाई करना रहा है। उसके भी कई बड़े लोग शिष्य हैं।चन्द्रा स्वामी, धीरेन्द्र ब्रम्हचारी भी तो कई लोगों के लिये सन्त ही हैं। एक सर्व मान्य सिद्धांत है कि जिस नाम, पहचान या वेषभूषा को समाज में सम्मान मिलने लगता है उसी दिशा में अपराधी बढ़कर नकल करने का प्रयास करता है। रावण सीता के अनुसार संत था। कालनेमो भी कुछ समय के लिये तो सन्त ही था। न सारे सन्त अपराधी हैं न ही सारे सन्त सन्त। सन्तों में दोनों प्रकार के लोग हैं जिन्हें न भक्त पहचान सकता है न ही भावना प्रधान व्यक्ति। उनकी वास्तविक पहचान तो विवेक प्रधान लोग ही कर सकते है।

आशाराम बापू,निर्मल बाबा,रामपाल,रामरहीम आदि अनेकों तथाकथित सन्तों में कौन कितना संत है और कौन कितना अपराधी यह आज तक स्पष्ट नहीं है। बाबा रामदेव के विषय में यह स्पष्ट दिखता है कि वे भले ही व्यापारी हों किन्तु अपराधी तो नहीं हैं। हम न तो किसी को बिना समझे सन्त कह सकते हैं न व्यापारी और न ही अपराधी। भावना प्रधान लोग यदि ज्ञानतत्व पढ़कर कुछ सोचना शुरु करते

हं तो यह हमारी सफलता हैं। आप यदि आशा राम बापू के रहन सहन को देखें तो हमें सन्त की कोई नई परिभाषा बनानी पड़ सकती है।

(6) श्री एम0 एस0 सिंगला,अजमेर, राजस्थान ज्ञानतत्व–50060

विचारः–ज्ञानतत्व 301 में 'कानून का राज' लेख पत्र रुप में प्रकाशित कर आपने उस पर अपना अभिमत दिया है। मेरे लिए सन्तोष की बात है कि लेख में व्यक्त आप मेरे लेख से सहमत रहे हैं। किन्तु फिर भी लेख में मेरा एक छोटा–सा मत भी आपको हजम नही हो सका। मेरे विचार मं देश में बहुसंख्यको के अधिकारों के प्रति अधिक ध्यान देने की आवश्यकता ह। यह भी चुनाव में बहुमत की मान्यता के सादृश्य पर होने से असंगत नहीं है। एक बार तो मैंने आपक इस मत को हलके में लेने का मन बनाया किन्तु फिर अपनी प्रतिक्रिया भेजना ही संगत लगा। आपकी छोटी–सी टिप्पणी से लगा कि आप पूर्वाग्रह से ग्रस्त हैं। तथा अपनी सोच से तिलतंडुलवत भी प्रभावित नहीं होना चाहते। क्या देश बहुसंख्य के आधार पर नहीं चल रहा या नहीं चलना चाहिये? क्या आप मुलायम सिंह से सहमत हैं कि मुसलमानों को प्राथमिकता दी जाय या पासवान से कि प्रदेश का मुख्यमंत्री मुसलमान हाना चाहिये या प्रधानमंत्री रहे मनमोहन सिंह से कि अल्प संख्यकों के लिये बजट में अलग से चार हजार करोड़ का प्रावधान कर दिया जाय। बहुसंख्य को नकारना कितना तर्कसंगत अथवा अन्यथा भी संगत क्यों नहीं लगता?उल्लेखनीय है कि अपने अन्तिम दिनों में कांग्रेस ने बहुसंख्य को कतई नकार दिया था। वर्तमान परिदृश्य उसी का नतीजा समझा जाना चाहिये।

एक ओर तो अन्यान्य क्षेत्रों में सांसारिक व्यवस्थाओं का हवाला देकर गौरवान्वित होने का एहसास किया जाता है और दूसरी ओर विश्वव्यापी व्यवस्था की अनदेखी की जाती है। विश्व में ऐसा कौन–सा देश है जो अपनी मौलिकता को अक्षुण बनाए नहीं रखता। किसी देश के राष्ट्र बनने के लिए प्रभुसत्ता के साथ –साथ उसे किन्ही तत्वों का रक्षण करना होता है। राजनीति शास्त्र के अनुसार कोई देश मात्र एक भूखण्ड नहीं होता। किसी देश को राष्ट्र कहलाने के लिए ये तत्व निहित होने बताए गए हैं– जातिगत एकता ,भाषा की एकता, ऐतिहासिक समानता, धर्म की एकता, भौगोलिक एकता,और समान राजकीय अवसर। आज तो देश का अपना नाम तक नहीं है।

उक्त परिप्रेक्ष्य में उत्तर की या इन विचारों को प्रकाशन में स्थान देने जैसी कोई महत्वाकांक्षा नहों है। मन्तव्य केवल इतना है कि आप अपने को सन्तुष्ट करें और अपने को तर्कसंगत उत्तर दे कि मेरे मन्तव्य में कहॉ या क्यों कमी लगती है। अपने मन्तव्य में बहुसंख्य के अधिकारों पर ध्यान देने से यह तात्पर्य नहीं हो जाता की शेष की उपेक्षा की जाय।

इस अंक (301) में ''अपराध और अपराध नियंत्रण'' पर आप के विचार सराहनीय और अनुकरणीय हैं। किन्तु लोकतंत्र में, स्वतंत्र होते ही,कुछ को छोड़कर (जिन्हें सत्ता में दूर रखने क भरसक और सफल प्रयास किये गए) राजनेताओं मं देश को लूटने की होड़ लग गई।ऐसे में राष्ट्र हित में सही सोच होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

सरकार शिक्षा का खूब ढोल पीटती है, दूसरी ओर मतदाता और प्रत्यासी दानों के लिए शिक्षा की आवश्यकता/अनिवार्यता नहीं रखी जाती। क्या सड़क छाप,अपराधी और हीन भावना से मुक्त सांसद/विचारक सही कानून बना सकेंगे या बनाना भी चाहेंग?

देश में सस्ती लोकप्रियता देश की तुला के एक पलड़े में और देश का भविष्य दूसरे पलड़े में रखा जाता है।

विचारः– आपके लेख के अधिकांश से मैं सहमत रहा। मैंने केवल एक छोटे से भाग की समीक्षा कर दी,तो आपको वह समीक्षा भी हजम नहीं हो सकी। हाजमा मेरा खराब है या आपका यह पाठक विचार करेंगे।हमारे सभी पाठकों को यह स्पष्ट पता है कि मैं किसी के विचारों से सहमत होता हूँ तो कुछ नहीं लिखता ।उन विचारों के जिस भाग से असहमति होती है उसी पर टिप्पणी करता हूँ।

मेरा संघ परिवार से निकट का सम्बंध रहा है। मैं एक दो मामूली बातों को छोड़कर अन्य पूरे कार्यक्रम से सहमत रहा हूँ। मैं संघ के समान नागरिक संहिता के विचार का पूरा–पूरा समर्थक ही नहीं बल्कि सहयोगी तथा सहभागी भी हूँ। दूसरी ओर मैंने संघ के हिन्दू राष्ट्र के विचार का हमेशा विरोध किया है जो अब तक है। मुझे याद है कि मोदी जी के पूर्व भारत की सभी सरकारें अल्पसंख्यक तुष्टीकरण के मार्ग पर चलती थीं। अटल जी की सरकार भी आंशिक रुप से इस धारणा के साथ थी। पूरा संघ परिवार तथा आप स्वयं भी हमेशा अल्पसंख्यक /बहुसंख्यक की धारणा को अमान्य करते थे। मैं तो इस धारणा का विरोधी था ही। सरकार के बदलते ही आप लोग इस अल्पसंख्यक /बहुसंख्यक धारणा का समर्थन करने लगे यह चोला बदल मुझे ठीक नहीं लगा। भारत में समान नागरिक संहिता हो इसका विरोध तो सिर्फ साम्प्रदायिक तत्व ही करते है। अन्तर सिर्फ यह है कि पहले साम्प्रदायिक दाढ़ी वाले इसके विरोधी थे और अब साम्प्रदायिक चोटी वाले। भारत में प्रत्येक नागरिक को समान प्राकृतिक अधिकार प्राप्त हैं।उसमें न बहुसंख्य कोई कटौती कर सकता है न ही अल्पसंख्यक। भारत के प्रत्येक नागरिक को सामाजिक मामले में अपने–अपने अधिकार प्राप्त हैं। सामाजिक स्वतंत्रता में कोई कानून हस्तक्षेप नहीं कर सकता । सिर्फ संवैधानिक मामलों में ही अधिकारों में कम–ज्यादा कर सकते हैं। मेरे विचार से संवैधानिक मामलों में भी धर्म जाति को आधार न बनाकर परिवार गॉव को आधार बना दं और भारत को परिवारों का संघ बना दे तो ज्यादा अच्छा होगा। मै अल्प संख्यक तुष्टीकरण के मामले मे मुलायम सिंह, रामविलास पासवान अथवा मनमोहन सिंह के विचारो का इसलिये विरोधी नही था कि मै बहुसंख्यक तुष्टीकरण का पक्षधर हूँ। सच्चाई यह है कि मै उस समय उन सबका घोर विरोधी था और आज आप सबका। मै जैसा पहले था और जैसा लिखता था वैसा ही आज भी हूँ। मेरे विचारो मे आपके समान बदलाव नही आया है।

मैं अल्पसंख्यक/बहुसंख्यक का फर्क प्रवृत्ति से करता हूँ। न सारे हिन्दू बदमाश हैं न सारे मुसलमान। क्या यह अच्छा नहीं कि हम सामाजिक और समाज विरोधी के बीच एक पहचान बनाकर विभाजन करा दें। यदि एक आकलन करें तो भारत में लगभग दो प्रतिशत ही अच्छे लोग हैं और लगभग इतने ही अपराधी बुरे लोग। शेष छियानवें प्रतिशत बीच के हैं जो समय –समय पर इधर–उधर होते रहते हैं। क्या यह अच्छा नहीं होगा कि हम दो प्रतिशत अच्छे लोग छियान्नवे प्रतिशत बीच वालों को मिलाकर बहुसंख्यक बन जावें तथा दो प्रतिशत अपराधियों को बदलाव हेतु मजबूर कर दें। इस धारणा में आपकों क्या कठिनाई है? जो लोग धर्म के आधार पर कानून बनाकर बहुसंख्यक सिद्ध होना चाहते हैं वह मुस्लिम परंपरा है,पाकिस्तान सहित कुछ देशों में आज भी कायम है। हमें चोटी वाले होकर इस्लामिक परंपराओं की ओर नहीं झुकना चाहिये। मेरे विचार से स्वयं मोदी जी भी आपकी लाइन से सहमत नहीं और मैं तो बिल्कुल हूँ ही नहीं।

आपने शिक्षा की आवश्यकता और महत्ता की चर्चा की है। आप बताइये कि

(1) ज्ञान या शिक्षा दोनों एक हैं या अलग–अलग।

(2)यदि अलग हैं तो किस तरह। यदि एक हैं तो कबीर अशिक्षित और ज्ञानी थे जबकि पण्डित नेहरु शिक्षित अज्ञानी।

(3)भारत में शिक्षित लोग समाज का अधिक शोषण करते हैं या अशिक्षित ।

(4)यदि भारत के सब लोग पूर्ण शिक्षित हो जावें तो निम्न अपराधों में से कौन–कौन सुलझ सकते हैं।(1) चोरी डकैती लूट(2)बलात्कार(3) जालसाजी धोखा धड़ी(4) मिलावट,कमतौल(5)हिंसा और आतंक।

(5) स्वतंत्रता के बाद के सरसठ वर्षों में शिक्षा लगातार बढ़ी है और चरित्र घटा है। एक सर्वे के अनुसार ज्ञान और विवेक भी घटा ही है। चरित्र पर शिक्षा का अधिक अच्छा प्रभाव पड़ता है या ज्ञान का?

आशा है कि आप सब का उत्तर मिलेगा।

(7) चिन्मय व्यास, देहरादून, उत्तराचंल ज्ञान तत्व 1626

ज्ञान तत्व का अंक 299 आज मिला। अंक 300 एक हफ्ते पहले मिल गया था। अंक 299 में आपने सर्वनारायण दास का लेख धर्मान्तरण और सेक्यूलरिजम के बारे में बहुत सन्तुलित चिन्तन वाला ज्ञान परख लेख प्रकाशित किया है इस लेख को सभी कट्टरपंथियों को पढ़ना चाहिये और धर्म के बारे में वास्तविकता समझनी चाहिये। विशेष रुप में मुस्लिम धर्मावलम्बियों को सारे देश के साथ,समान नागरिक सहिंता अपनाने की बात माननी चाहिये। अल्पसंख्यक/बहुसंख्यक सब समान रुप से समान अधिकार वाले नागरिक है। इस देश में सब समान है इसलिये धर्म के आधार पर आरक्षण मॉगना अनुचित है तथा चार पत्नियों की बात भी सर्वथा अनुचित है। एक पत्नी से अधिक पत्नी रखने के लिये कई हिन्दू धर्म परिर्वतन कर लेते है,यह भी सर्वथा अनुचित है। किसी भी धर्म वाले को यदि एक से अधिक पत्नियॉ रखनी हो तो उचित कारण के अंर्तगत न्यायालय से अनुमति प्राप्त करनी चाहिये। इसी तरह धर्मान्तरण के लिये भी उचित कारण के अंर्तगत न्यायालय से अनुमति प्राप्त करनी चाहिये। धर्म के नाम पर अलग–अलग आचार संहिता सर्वथा अन्यायपूर्ण है। मुस्लिम समुदाय के समझदार लोगों को स्वयं ऐसा नही करना चाहिये।

उत्तरः– यह सही है कि भारत में बहुसंख्यक अल्पसंख्यक की अवधारणा समाप्त होकर समान नागरिक संहिता होनी चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं कि बहुसंख्यकों की मान्यता सब पर बाध्यकारी बना दी जावं। विवाह या तो पारिवारिक व्यवस्था है या सामाजिक।विवाह के संबंध में सरकार को किसी भी स्थिति में कोई कानून नहीं बनाना चाहिये। चार पुरुष मिलकर किसी एक महिला की इच्छा से पत्नी बनाकर रखें या चार महिलाएँ सहमति से एक पुरुष के साथ । इसमें सरकार को कानून बनाने की क्या आवश्यकता है। आप राम को आदर्श माने और हम उनके पिता दशरथ को तो इसमें सरकार कहॉ से आ गई। आप विवाह करें या न करें या कितने विवाह करें यह सामाजिक बंधन है जो हमें मानना चाहिये किन्तु कानून से नहीं। आप मुस्लमानों की समान स्वतंत्रता की बात करिये न कि अपने नियम उन पर थोपने की।

यदि समाज में महिलाओं की संख्या पुरुषों से ज्यादा होगी तब अविवाहित शेष बची महिलाएँ अपनी इच्छा पूर्ति के लिये कहॉ जावें। कानून बनाने वाले नेहरु,अम्बेडकर तो अब जीवित नहीं हैं जो ऐसी महिलाएँ अपना दुख बतावें। इसी तरह वर्तमान में महिलाओं का अभाव है तो शेष बचे पुरुषों की चिन्ता कौन करेगा। वैश्यालय तक तो सरकार ने रोक दिये हैं। मेरे विचार में ये सब बेकार के कानून हैं जो हटा लेना चाहिये।

(8)रवीश कुमार, टी. वी. एंकर, दिल्ली

एकता से पहले विविधता के लिए दौड़

राजनीति में जो लोग परिवारवाद में लिंग–आधारित प्रगतिशीलता खोज रहे हैं उन्हें इस मसले को ठीक से देखना चाहिए। राहुल गॉधी के उपाध्यक्ष बनाए जाने पर कई लोगों को लिखते बोलते सुना है कि सोनिया ने भी बेटे पर ही भरोसा किया। बेटी प्रियंका को आगे नहीं बढ़ाया।जैसे प्रियंका गॉधी वाकई किसी हाशिये पर रही हों। सोनिया गॉधी प्रियंका गॉधी को ही कांग्रेस अध्यक्ष बनातीं तो क्या परिवारवाद प्रगतिशील हो जाता?लोकतांत्रिक हो जाता? सिंधिया परिवार के नाम पर तो वसुंधरा राजे और ज्योतिरादित्य दोंनो हैं। गोपोनाथ मुंडे की दो –दो बेटियॉ राजनीति में हैं। उसी बीजेपी के टिकट पर जो परिवारवाद को अपनी सुविधा के अनुसार मुद्दा बना देती है मगर इस चतुराई से कि वो सिर्फ गॉधी परिवार तक सीमित रहे। महाराष्ट्र चुनाव में एक बेटी को विधायक का टिकट और एक को सांसदी का टिकट देती है। सवाल कांग्रेस को गॉधी परिवार से आजाद कराने का तो है ही लेकिन क्या इससे कांग्रेस वो कांग्रेस बन जाएगी? क्या हिन्दुस्तान की कोई पार्टी आजादी के पहले की कांग्रेस बन सकती है? किस पार्टी में तब कांग्रेस की तरह नेतृत्व और विचारधारा के स्तर पर इतनी विविधता बची है?इस सवाल को आप दलीय निष्ठा से ऊपर उठकर देखेंग तो बहुत कुछ दिखाइ देगा। आजादी से पहले कांग्रेस आज की कांग्रेस या बीजेपी या किसी भी दल से अलग थी।आज के दलों से तुलना करेंगे तो बहुत मामलों में इतनी आदर्शवादी कि उसके नजदीक कोई पहुँच भी नहीं सकता। कांग्रेस एक विचारधारा वाली पार्टी नहीं थी। आज हर पार्टी एक विचारधारा वाली पार्टी बन गई है। कांग्रेस में समाजवाद,वामपंथ,दक्षिणपंथ सब टकरा रहे थे लेकिन असहमतियॉ टकराव की उस सीमा पर नहीं जा रही थी कि कोई कांग्रेस से निकल रहा था।शायद उस वक्त का संदभ ही ऐसा था कि आप आजादी के लक्ष्य को हासिल करने में दो दल नहीं बना सकते थे। इसलिए हर दल कांग्रेस में थे और कई दलों के नेता कांग्रेस के नेता थे। जब तक आप इस बुनियादी असहमति– सहमति को नहीं समझेंगे, आप गॉधी नेहरु पटेल–आजाद से लेकर बोस,राजेंन्द्र प्रसाद जैसे नेताओं के रिश्तों और निष्ठाओं को नहीं समझ पायेंगे।

नेहरु के अध्यक्ष बनने पर एक जगह पटेल कहते हैं कि कांग्रेस अध्यक्ष के पास तानाशाही शक्तियॉ नहीं हैं। वे एक सुगठित संगठन के अध्यक्ष होते हैं। कांग्रेस किसी व्यक्ति को निर्वाचित करके,चाहे वह कोई भी हो,अपनी प्रचुर शक्तियों को नहीं छोड़ देती ह। नेहरु ने इस बात के लिए पटेल के खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कारवाई नहीं की। न पटेल के इस्तीफे की मॉग हुई। पटेल और नेहरु के बीच कई बातों को लेकर मतभेद थे और वो मतभेद इतिहास का हिस्सा हैं जिन पर इतिहास में काफी कुछ लिखा गया है। क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि कोई पटेल जैसी बात आज बीजेपी में कह दे। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के खिलाफ या अध्यक्ष अमित शाह के खिलाफ।या यहीं बात कोई आज के कांग्रेस में राहुल या सोनिया गॉधी के खिलाफ कह सकता है। समाजवादी पार्टी में या बसपा में भी कह सकता है क्या? इतिहास के नेताओं के मतभेदों के नाम पर रिश्तों की नई व्याख्या हो रही है लेकिन उनकी इस प्रवृत्ति से भाषण देने वाले नेता

क्या कुछ सीख रहे हैं। पटेल ने तो सुभाष चन्द्र बोस को कांग्रेस अध्यक्ष पद के उम्मीदवार के रुप में पसंद नहीं किया था। तो क्या इतिहास के इस तथ्य को बंगाल की राजनीति में बोस को नायक और पटेल को खलनायक बनाने का खेल चल दिया जाए।

नेशनल बुक ट्रस्ट ने गॉधी पटेल–पत्र और भाषण सहमति के बीच असहमति नाम से एक पुस्तक प्रकाशित की है।डा0 नीरजा सिंह ने गॉधी और पटेल के बीच हुए पत्र व्यवहारों का संकलन किया है। हिन्दी में है और मात्र नब्बे रुपये की है। इन पत्रों को आप पढ़ेगे तो लगेगा कि आज पटेल की याद में इंडिया गेट पर दौड़ा ही जा सकता है, पटेल नहीं बना जा सकता । कोई सरदार पटेल जैसा साहसिक होगा वो पार्टी से निकाल दिया जाएगा। सरदार पटेल तमाम मुद्दों पर अपनी स्पष्टता व्यक्त करने वाले राजनीति के वे प्रतीक हैं जिनके जैसा वही बन सकता है जो दूसरों को भी सरदार की पगड़ी पहने देख बर्दास्थ कर सकता हो। अपने विचार को हर कीमत पर कहना और विपरीत दिशा में जाने का साहसिक फैसला कर पाने की क्षमता सिर्फ और सिर्फ सरदार पटेल में दिखती है। लेकिन सरदार पटेल ने इसी के साथ एक और बेमिसाल उदाहरण पेश किया है। वो है संबंधों को विचार से अलग रखना।

पटेल ने गॉधी से असहमत होते हुए भी गॉधी के प्रति श्रद्धा और सेवा करने की मिसाल पेश की है। एक बार दोनों जेल में साथ हो गए।गॉधी जो खाते थे वही पटेल खाने लगे। उनके लिए दातुन बनाने की जिम्मेदारी ले ली। किसी नेता को इस किताब से दोनों के बीच हुए पत्राचार को दे दे तो वो राजनीति में ऐसे पेश करेगा जैसे आज आप सोचने लगेंगे कि पटेल और गॉधी दुश्मन थे। सिर्फ पटेल ने नहीं, बल्कि गॉधी ने भी पटेल से असहमत होते हुए भी उनके प्रति अपना विश्वास कभी नहीं खोया। सम्मान में कोई कमी नहीं आई। गॉधी भी असहमत होते हुए कहते थे कि अगर आपका मन कह रहा है तो वही कीजिए। ऐसा ही नाजुक और स्मरणीय रिश्ता पटेल और नेहरु का रहा है। विरोध के बावजुद कोई पटेल और नेहरु को सार्वजनिक रुप से दूसरो से लड़ा नहीं सका लेकिन आज की राजनीति दोंनो की मूर्तियों को दूसरे स भिड़ा रही है। पटेल जब बहुत बीमार हो गए तो दिल्ली से जाने लगे।जाते वक्त उन्होंने किसी बड़े नेता(नाम याद नहीं आ रहा)का हाथ पकड़ कर कहा कि मैं अब बहुत बीमार रहने लगा हूँ। दिल्ली नहीं लौंट पाऊंगा। तुम नेहरु का साथ कभी मत छोड़ना। जवाहर मेरे बिना अकेला पड़ जाएगा।संदर्भो और यात्राओं में ही देखना चाहिए। जवाहर और सरदार की जोड़ी को उनके योगदानों के सहारे अलग किया जा रहा है। कोई सरदार की सख्ती और उदारता तो दिखाए और यह भी तो सोचे कि हर फैसला अपनी मर्जी और साहस से लेने वाले सरदार कांग्रेस से बाहर क्यों नही गए क्योंकि तब कांग्रेस में हर कोई रह सकता था और वो कांग्रेस गॉधी नेहरु से ही नही बनती थी बल्कि सरदार पटेल और सुभाषचन्द्र बोस से भी बनती थी जिन्हें चुने जाने के बाद हटा दिया गया। 1936 में सरदार जिस मुद्दें पर नेहरु को नही चाहते थे कि वे फिर चुने जाए, उसी मुद्दे पर बोस का विरोध कर रहे थे कि कहीं कांग्रेस वामपंथ की तरफ न झुक जाए। पटेल का विरोध विचारधारा को लेकर था न कि जवाहर या बोस नाम के व्यक्ति से । पटेल को लगता था कि बोस ने आई एन ए बनाने से पहले कभी जनआन्दोलन नहीं किया है। वे कहा करते थे कि इस वक्त आजादी का आन्दोलन जरुरी है या गॉव चलो टाइप के समाजवादी आन्दोलन चलाय जायें। पटेल कहते थे कि आप अपना आन्दोलन चलाइये मगर कांग्रेस के प्लेटफार्म का इस्तमाल मत कीजिए।1940 तक आते–आते बोस भी तो कहने लगे कि कांग्रेस अंग्रजों से मिलकर सरकार बनाने का जुगाड़ करने लगी है।आचार्य नरेंन्द्र देव ने सुभाषचन्द्र बोस के खिलाफ कड़े शब्दों का इस्तमाल किया है।एकता बिना विविधता के नही हो सकती । उस विविधता के लिए इन महान राजनीतिक दलों में कितनी जगह हैं? खुद से भी पूछिये कि आप अपने विरोधी का सरदार पटेल की तरह सम्मान कर सकते हैं,क्या? आप जिस नेहरु से कथित नफरत करतें हों उन्हें प्रधानमंत्री का पद सौंप सकते है क्या? इतना लोड मत लीजिए। इस बार एकता के लिए दौड चुके हों तो अगली बार विविधता के लिए भी दौडियेगा तभी तो आप एकता का मर्म समझ पायेंगे। वल्लभभाई पटेल,राजगोपालाचारी ,गॉधी, राजेंन्द्र प्रसाद और जवाहर लाल नेहरु। ये पांचों कांग्रेस की धुरी थे। पटेल, गोपालाचारो और प्रसाद कांग्रेस में आने से पहले स्वतंत्र रुप से क्षेत्रीय नायक के रुप में स्थापित हो चुके थ। आज की राजनीति इन सबको एक दूसरे के खिलाफ पेश कर रही है। पटेल और नेहरु को जितना भी एक दूसरे के खिलाफ पेश कर लिया जाए लेकिन नेहरु पटेल के विरोध के बाद भी बिना पटेल के न तो कांग्रेस अध्यक्ष बन सकते थे न प्रधानमंत्री। क्या आज इतनी लोकतांत्रिक विविधता किसो दल में हैं? इसका जवाब खोजेंगे तो आपको रन फार यूनिटी में नही मिलेगा। प्रधानमंत्री ने ठीक कहा कि जो देश इतिहास को भूल जाता है वो इतिहास का निर्माण नहीं कर सकता । उन्हें यह भी कहना चाहिए कि जो देश इतिहास को उसके संदर्भो और बारीक विवरणों को ठीक से समझे बिना निष्कर्ष निकालता है उसका निष्कर्ष गलत होता है । वर्तमान के दौर को लेकर भावुक होने से काम नहीं चलेगा।आज किसी पार्टी में आंतरिक चुनाव नही होते। क्या पटेल को याद करने वाली बीजेपी में हुआ। दो नेताओं के विरोध को पार्टी अनुशासन के खिलाफ बता दिया जाता है और कोई नागपुर से परिवार का मुखियॉ आकर फैसला कर देता है। बीजेपी ही क्यों? किस दल में हैं? क्या बीजेपी कभी शिवसेना और अकाली दल के परिवारवाद पर बोलेगी? क्या उसने अपने भीतर और बाहर परिवारवाद पर समझौते नही किये हैं? राहुल गॉधी ने जब पाटी में आंतरिक चुनाव का काम शुरु किया तो कांग्रेस में ही विरोध हो गया । लोकतंत्र के गैर कांग्रेसी चिन्तको ने भी इसका मजाक उड़ाया। क्या पता एक दिन संगठन में चुनाव की स्थिति उनके पद पर पहुच जाए जहॉ वे परिवार की वजह से बिठाये गए है। राहुल नौटंकी कर रहें हैं तो बाकी दलों ने इस प्रकिया को अपने यहॉ क्यों नहीं अपनाया। बसपा में तो परिवारवाद नहीं हैं तो क्या वहॉ लोकतंत्र हैं? क्या अध्यक्ष पद की दावेदारी कोई नेता कर सकता हैं? कोई दल अपवाद नहीं है। किसी दल में अध्यक्ष पद के लिए चुनाव नहीं होते। मनोनयन होता है। अपना दल पर एक अच्छ रिपोर्ट छपी है। आप देखिए कि वहॉ सत्ता संघर्ष की कैसी नई कहानी बन रही है। मॉ अपना दल की अध्यक्ष है। मॉ ने अपनी बेटी और सांसद अनुप्रिया पटेल को महासचिव पद से हटा दिया है। अनुप्रिया की जगह उनकी बड़ी बहन पल्लवी को उपाध्यक्ष बना दिया है। इस चार नवंबर को मॉ और बेटी अलग– अलग रैलियॉ करेंगे। भारतीय राजनीति का यह अदभुत नजारा है। यहॉ बेटे विरासत पर दावेदारी नहीं कर रहें बल्कि मॉ और बेटियों में बखरा लग रहा है। परिवारवाद की दावेदारी जमीन के बॅटवारें जैसी हो गई है। पंकजा मुंडे के उभार को मैंने भी महिला नेतृत्व की दावेदारी की नजर से प्रगतिशील नजर से देखा था लेकिन इससे तो परिवारवाद ही मजबूत हो रहा है। किसी सांसद के बेटे को सांसद बनने से नहीं रोक सकते । बनना भी चाहिए लेकिन पार्टी संगठन में वो थोपा क्यों जाता हैं। उसके खिलाफ कोई चुनाव क्यों नहीं लड़ता । आजादी के पहले के कांग्रेस में ये सब होता था। आज किसी पार्टी में नहीं होता।

उत्तरः—जब किसी देश के समक्ष विशेष परिस्थिति होती है तब सामान्यकाल के विपरीत विरोधाभाषी विचारधाराओं के लोग एक दूसरे से समझौते करके सभो एक लक्ष्य के लिये काम करने लगते हैं। स्वतंत्रता संघर्ष एक विशेष काल था। सबका लक्ष्य एक समान था तथा सबका नेता भी एक था और वह सामूहिक था। उस समय कोई भी व्यक्ति चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हों, गॉधी को सहमत किये बिना आगे नहीं बढ सकता था। इसका अर्थ यह नहीं था कि गॉधी की तानाशाही थी। इसका अर्थ यह था कि सबने मिलकर गॉधी का नेतृत्व स्वीकार किया था।

स्वतंत्रता के बाद लक्ष्य बदला। विशेष स्थिति बदली और सामान्य काल शुरु हुआ। विचारधाराओं के आधार पर दल बनने लगे। वामपंथी अर्थनीति,दक्षिण पंथी अर्थव्यवस्था तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था के नाम से अलग—अलग गुट खड़े हो गये। जो संघ दूर—दूर तक स्वतंत्रता संघर्ष से दूरी बनाकर रखता था वह भी धर्म और राष्ट्र को मिलाकर एक नई विचारधारा को खड़ी करने की कोशिश करने लगा।संघ परिवार की कोशिशों की प्रतिक्रिया स्वरुप अल्पसंख्यक भी अलग से संगठित होने लगे।

पंडित नेहरु के बाद शास्त्री जी को निकाल दे तो शेष सारे कालखंड में राजनीति फिर से विशेष काल की ओर बढ़ने लगी। लक्ष्य सिर्फ एक हो गया कि किसी तरह सत्ता बना कर रखी जाये।साम्यवादी अपनी अर्थनीति प्रधान विचारधारा को लेकर बढ़ते रहें तो संघ परिवार अपनी धर्म राष्ट्रकी विचारधारा पर। अल्पसंख्यक सिर्फ एक ही लक्ष्य को लेकर चल रहे थे कि किसी तरह संघ मजबूत न हो। इनमें भी संघ अकेला था कि वह हिन्दुत्व के लक्ष्य के विरुद्ध किसी से समझौता नहीं करता था। संघ को रोकने के नाम पर सभी अल्पसंख्यक समूह सत्ता लोलुप नेताओं की मद्द में हमेशा तैयार रहते थे। साम्यवादी भी प्रायः ऐसा ही करते थ। भाजपा को छोड़कर एक भी ऐसा दल नहीं है जिसने सत्ता लोलुपता से हटकर कभी विचारधारा को महत्व दिया हो। आज यदि राजनैतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र शून्यवत है तो इसका कारण सत्ता और स्वार्थ का एकीकरण मात्र है।जहॉ तक राहुल गॉधी का सम्बंध है तो राहुल गॉधी में गॉधी के तो गुण थे किन्तु नेहरु के नही ।आप यदि गॉधी को परिस्थिति या स्वार्थ वश नेहरु की तरह उपयोग करना चाहेंगे तो न राहुल गॉधी रह पायेंगे न नेहरु। और वही हुआ जो आप आज देख रहें है।

नरेन्द्र मोदी के आने के बाद लक्ष्य बदल गया है। लक्ष्य बन गया है विश्व प्रतिस्पर्धा।विश्व में समाजवाद अथवा साम्यवाद का खतरा लगभग समाप्त हो गया है। दुनियॉ पूंजीवाद के मार्ग पर बढ़ रही है। आवश्यक है कि भारत भी विकास को सर्वोच्चय प्राथमिकता बनाकर आगे बढ़े। लेकिन संघ परिवार तथा इस्लाम अपनी धार्मिक प्राथमिकताओं को पीछे छोड़ने के लिए तैयार नही है। नरेन्द्र मोदी विकास की दिशा में एक कदम आगे बढ़ते है तो संघ परिवार धार्मिक ध्रुवीकरण की दिशा में दो कदम आगे बढ़कर मोदी के कदम को पीछे छोड़ने का प्रयास करता हैं।

मुसलमानों को भी इसी विवाद में मजा आता है। विपक्ष ऐसे मुद्दों को आगे करके संघ परिवार की मद्द करता है। वर्तमान में धर्म परिर्वतन का मुद्दा उठाकर संघ परिवार तथा मुसलमानों के बीच ध्रुवीकरण का प्रयास हो रहा है, जिसमें संघ परिवार मोदी की आड में तथा मुसलमान विपक्ष की आड में अपना—अपना हित साधने में लगे है। बीच में नरेन्द्र मोदी तथा ऐसे ही अन्य विकास समर्थक लोग परेशान हो रहे है। यह सच है कि भारतीय जनता पार्टी में नरेन्द्र मोदी या अमित शाह के विरूद्व अभी कोई नही बोल सकता है उसी तरह जैसे स्वतंत्रता के बाद पंडित नेहरू के खिलाफ किसी की हिम्मत नही पडती थी। यदि लक्ष्य एक है तो विचारधाराओं का टकराव महत्व नही रखता है। ऐसे समय में किसी एक व्यक्ति का तानाशाही नेतृत्व भी बुरी बात नहीं हं। अब हमारा लक्ष्य स्वतंत्रता के बाद उभरी लोकतंत्र की बुराइयों का समाधान है, जिसके समाधान के साथ—साथ विकास की दिशा मे बढना है। इस समय धर्म, जाति, लिंग अथवा अन्य विचारधाआं का टकराव उचित नही हं। साथ ही अब तक नरेन्द्र मोदी ने एक भी ऐसा कोई अभास नही दिया है जिस आधार पर नरेन्द्र मोदी का तानाशाही नेतृत्व स्वीकार न किया जायें । पिछली सभी सरकारा की अपेक्षा नरेन्द्र मोदी अधिक अच्छे तरीके से समस्याआ का समाधान कर रहे हं। अभी समस्याओं के सुलझते तक समाधान कर रहे है। अभी समस्याओं के सुलझते तक हमें लोकतंत्र या तानाशाही के विवाद से द्र रहना चाहिये। जब समस्याएं सुलझ जायेगी तक हम इस मुद्दे पर विचार कर लेंगे। नेहरू और पटेल का विवाद उसी समय से पैदा हो गया जब से नेहरू खानदान ने अपने परिवार को छोडकर अन्य सबको उपेक्षित करना शुरू किया। इस उपेक्षा में पटेल के साथ लाल बहादूर शास्त्री,नरसिम्हाराव सहित सारे लोग इस उपेक्षा के शिकार हो गये। अब यदि नई सरकार थोडा सा नेहरू अम्बेडकर को किनारे करके पटेल शास्त्री को आगे बढाती है तो मेरे विचार में किसी तरह के प्रश्न उठाने की जरूरत नही है। एकता या विविधता की प्राथमिकता का प्रश्न देश काल परिस्थिति अनुसार निर्भर करता है कि किसे प्राथमिकता दी जाय। आप विविधता के पक्षधर है। मेरे विचार में यह विवाद दोना तरफ से तब तक अनावश्यक है जब तक दोना को सीमाये न टकराने लगे। अभी ऐसा कोई टकराव नहीं दिख रहा है। अन्य पार्टियों के साथ यदि भाजपा की तुलना को जाये तो लोकतंत्र के मामले में तथा आंतरिक चुनाव के मामले मे भाजपा का इतिहास जे डी यु से नीचे तथा अन्य सब दलों से उपर है। यदि संघ और भाजपा को एक मान लिया जायेगा तब तो ऐसा भ्रम संभव है। अन्यथा अभी कुछ कहना जल्दबाजी होगी।देखते जाइये कि कुछ ही दिनों में मोदी की भाजपा और संघ की भाजपा एक दूसरे के पक्ष विपक्ष के रुप में दिखने लगेंगे और पता नही वर्तमान विपक्ष के लोगों में से कौन किसके साथ जायेगां। मुझे तो उम्मीद है कि मोदी नीतिश कुमार, अरविन्द केजरीवाल सरीखें लोग एक जुट हो सकते है किन्तु अभी निश्चित रुप से कुछ कहना जल्द बाजी होगी। आपको भी एकता और विविधता के बीच अथवा लोकतंत्र और तानाशाही के बीच निष्कर्ष निकालने म इतनी जल्दवाजी नही दिखानी चाहिये।

(9)शशि तिवारी,विस्फोट डाट कॉम से

विश्वास आदमी को बॉधता है। लेकिन विश्वास से उपजा विश्वास जब टूटता है तो आदमी न केवल नास्तिक हो जाता है बल्कि अराजक भी बन जाता है। सफलता के लिए कड़ी मेहनत के साथ दृढ़ विश्वास का होना भी परम आवश्यक है। जनता की भलाई एवं विकास के लिए जनता द्वारा जनता के प्रतिनीधियों के कन्धे पर उनके विश्वास को कायम रखने की अहम जिम्मेदारी होती है। इतिहास गवाह है कि जब—जब जिम्मेदारी ने गैर जिम्मेदाराना कार्य किया है, तब—तब उस व्यक्ति एवं शासक का पतन हुआ है। फिर बात चाहे धर्म की हो या राजनीति की हो।

हाल ही में हुए दो राज्यों महाराष्ट्र एवं हरियाणा के विधानसभा चुनाव ने अटकलों एवं धुंध के कोहरे को साफ करते हुए मोदी क विजयपथ को न केवल आगे बढ़ाया बल्कि जीत की माला पहनाकर अपना अटूट विश्वास भी व्यक्त किया। इस चुनाव में तमाम उन राजनीतिक पण्ड़ो को धक्का लगा जो मोदी के जादू को उतरता हुआ बता रहे थें। इस चुनाव ने कई राजनीतिक पार्टियों को न केवल आइना दिखाया बल्कि एक साफ संदेश भी दे दिया कि अब वंशवाद, जाति,धर्म,सम्प्रदाय, अंगडे–पिछडे,दलित नफरत की राजनीति करने वालों के लिए कोई स्थान नहीं है।दोनों राज्यों के परिणाम अब अन्य राज्यों में होने वाले चुनाव एवं राजनीति को भी प्रभावित करेंगे।

जब जनता ने मोदी पर विश्वास किया है तब अब उनकी जिम्मेदारी भी और बढ़ गई है,चुनाव में किये गये वादों को पूरा करने एवं नया दृष्टिकोण के साथ“सबका साथ सबका विकास लेकर करना ही होगा। हालॉकि अभी मोदी के कार्य प्रदर्शन का लेखा जोखा हो,डीजल–पेट्रोल के गिरते भावों की हो, सीमा पर रक्षा की हो,कडा जवाब देने की हो, एवं सांसदों द्वारा अपन क्षेत्र में पॉच गॉवों को मॉडल बनाने की हो। एक अच्छी योजना की शुरुआत हैं।

यहॉ सबसे महत्वपूर्ण है कि मोदी के कुनबे के मंत्री एवं भाजपा शासित राज्यों के मंत्री कितनी शिद्दत से एवं इमानदारी से कार्यों को, विकास को अंजाम देते है या पूर्ववर्ती सरकार की तरह अलाल बन भ्रष्टाचार एवं अपनी सम्पति बढ़ाने में ही चकरधिन्नी रहते है। अभी हाल ही में मोदी के एक मंत्री की सम्पत्ति के बारे में मिडिया में छपी खबर के अनुसार 3 माह में उनकी सम्पत्ति दो दुनी हो गई। यह निःसंदह जनता के बीच एक अच्छा संदेश नहीं है। जरुर दाल में कुछ काला है। जिस देश में गराबों की 75 प्रतिशत से संख्या अधिक हो उस देश के जनप्रतिनिधि करोड़पति, अरबपति हो,इतना ही नहीं उनकी आय दिन रात चौगनी से भी ज्यादा हो। इतना ही नहीं इन जनप्रतिनिधियों को मिलने वाले सभी सरकारी सुख–सुविधाओं का भी भरपूर उपयोग करने में, सब्सिडी लेन में भी कोई गुरेज न हो? क्या यह आम जनता की गाढ़ी कमाई की बर्बादी नहीं हैं? गरीबों के पैंसे पर ठाठ कहॉ तक उचित है? क्या यही समाज सेवा है? जब पैसा/पगार लेते है तो जवाबदेही एवं पारदर्शिता से पर्दा क्यों ? आम जनता को पुरा अधिकार है कि वह नेताओं की हर गतिविधि पर नजर रखे एवं अनुचित लाभ लेने वालों की भी अच्छी तरह से खबर ले। जनता में इसको लेकर जन–जागरुकता का भी अभियान समय–समय पर चलायें?

हालॉकि मोदी पारदर्शिता एवं जवाबदेही पर जोर तो दे रहे है लेकिन देखना यह है कि उनक अपने मंत्री इस पर कितना अमल करते है और विपरीत आचरण वालो के विरुद्ध मोदी क्या कार्यवाही करते है। इसी पर उनकी कथनी एवं करनी की अग्नि परीक्षा होगी।

उत्तर–2 आपने नरेन्द्र मोदो से अपेक्षा की है कि वे जनता के विश्वास को न टूटने दे। मं समझता हूॅ कि अब तक कोई एसा काम नही हुआ है जो इस विश्वास के टूटने का लक्षण हो। आपने किसी मंत्री की सम्पत्ति तीन माह मे दो गुनी होने की बात कही। अब तक यह स्पष्ट नही हुआ है कि मंत्री ने कोई भ्रष्टाचार किया हो अथवा उनकी सम्पत्ति सही तरीके से दुगुनी न न हुई हो। यह भी तो संभव है कि उन्होनें उस समय पिछले तोन महिने पहले अपनी सम्पत्ति का कम मुल्यांकन किया हो । दुसरी बात यह भी है कि उन्होंने बढ़ी हुई सम्पत्ति की स्वयं घोषणा की है न कि किसी छापे में पकड़ी गई है। सच क्या है? यह मै नही जानता और सम्भवतः आप भी नही जानते है क्यांकि यदि आप जानत होते तो अवश्य ही अधिक स्पष्ट लिखते। सिर्फ अनुमान से इस प्रकार की बातें उठाना कोई अच्छी बात नही है।

नरेन्द्र मोदी के जीत जाने या सरकार बनाने के आधार पर आप यदि उनके साथियों में देवत्व की अपेक्षा करने लगे तो यह आपकी भूल है यदि समाज का औसत चरित्र नब्बें है तो पंचानवें वाला चरित्रवान तथा पचासी वाला चरित्रहीन दिखना चाहिए।यदि समाज का औसत चरित्र साठ होगा तो पैसठ वाला चरित्रवान और पचपन वाला चरित्रहीन दिखेगा। आज राजनीति का औसत चरित्र यदि पाच के आसपास बचा है तो आप दस पन्द्रह प्रतिशत वालो की आलोचना करें यह ठीक नही।